DOI: 10.51220/hjssh.v10i1.6

Himalayan J. Soc Sci.& Humanities (ISSN-0975-9891): 2015, Vol 10, pp 55-74

भारत–पाकिस्तान सम्बन्ध वर्तमान परिदृश्य में मुद्दे और चुनौती

जयवीर सिंह, सिरिल गोरन

राजनीति विज्ञान विभाग, चौ0 चरण सिंह विश्वविद्यालय परिसर, मेरठ (उ0प्र0)

sirilgauran@gmail.com jaivirrana64@gmail.com

Received : 17.08.2015 **Accepted: 19.10.2015**

ABSTRACT

राष्ट्र के विकास में बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि तत्कालीन समाज की सामूहिक सोच के गति व दिशा क्या थो। इसी सोच के आधार पर राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण होता है, संस्थाऐं बनती है और सम्यक विकास होता है। जापान परमाणु के मलबे से फिर उठा खड़ा होता है। दुनिया की बड़ी ताकतों में शुमार करा लेता है। चीन भी उसी समय साम्यवाद अपनाता है बड़े देशों की कतार मे खड़ा हो जाता है। भारत और पाकिस्तान भी लगभग उसी समय आजाद होते है और प्रजातंत्र की राह पकड़ते है। भारत में प्रजातंत्र की पकड़ मजबूत होती हे। विकास होता है पर धीमी गति से नतीजतन गरीबी के रास्त पर पड़ता है। आजादी के कुछ ही समय बाद से प्रजातंत्र हिचकोले लेने लगता है। 66 साल में 33 साल सैनिक शासन का कब्जा होता है। ऐसा नहीं है कि भारत में सामाजिक विविधताऐं और तज्जनित वैमनस्याऐं पाकिस्तान से कम थी या है लेकिन बात राष्ट्र के सामूहिक सोच की थी जिसने दोनों में अंतर किया। भारत में एक बार आपातकालीन स्थिति भी लगाई गयी लेकिन राष्ट्र की सोच ने इसे इस तरह नकारा कि आज किसी शासक ने हिम्मत नहीं की दुबारा इसके बारे में सपने में भी सोचे।

भारत के मुकाबले पाकिस्तान काफी बेहतर राष्ट्र बन सकता था। उस देश की भौगोलिक स्थिति पर गौर करें। विशेषज्ञों का मानना है कि पाकिस्तान की स्थिति दुनिया में शायद सबसे बेहतर है। अरब सागर की खाड़ी के मुहाने पर स्थित होने के कारण यह व्यापार और वाणिज्य विश्व का केन्द्र हो सकता था। परा–महादेशीय ऊर्जा ट्रांसपोर्ट का हब बन सकता था। चीन से बाहरी दुनिया के बीच लिंक का सबब बन सकता था। यहां तक की भारत के लिए भी निवेश का बेहतर जरिया हो सकता था और साथ ही भारत और एशिया के कई देशों के लिये आदान–प्रदान का माध्यम बन सकता था। हालांकि इसके पास प्राकृतिक संसाधन जैसे तेल नहीं थे फिर भी इस भौगोलिक विशेषता के कारण जो इसकी आमदनी का बड़ा साधन होता, एशिया महाद्वीप का सम्पन्न देश हो सकता था लेकिन पाकिस्तान की नीयत कुछ और ही थी। यह बन गया दुनिया का परमाणु जखीरा रखने वाला देश अगले दो वर्षों में बन जायेगा।

इस मुल्क का 30 फीसदी बजट सेना को चला जाता है। गरीबी और अशिक्षा का यह आलम है कि आजादी के समय 52 फीसदी लोग साक्षर थे (भारत से ज्यादा) लेकिन 66 साल बाद भी आज मात्र 56 फीसादी लोग ही साक्षर है जबकि भारत में 74 फीसदी। सेना फैसला लेती है कि जम्हूरियत रहेगी या फौजी हुकूमत। आतंकवादी तय करते है कि चुनाव कैसे होगा और कौन शासन करेगा? हाल की रिपोर्ट बताती है कि नवाज शरीफ प्रधानमंत्री इसलिये है कि उन्हें तहरीक–ए–तालिबान और जमात को

© SHARAD

पैसा न केवल पंजाब प्रान्त के बजट से बल्कि अन्य स्रोतों से भी दिया है और वादा किया है उनको न छेड़ने का

दंत कथाओं में एक किस्सा है। शर जब भी शिकार करता है तो गीदड़ पीछे–पीछे दौड़ता है। जब शेर शिकार मार कर पेट भर कर हट जाता है तो गीदड़ भी बचे–खुचे से अपना पेट भरता है। एक बार एक शेर एक हिरण का शिकार करने के लिए दौड़ा। डर से हिरण जान ले कर भागा। करीब आधे घण्टे की इस दौड़ के बाद हिरण शेर के कब्जे में नहीं आया और निकल गया। गीदड़ ने चुटकी लेते हुए शेर से पूछा 'सरकार आप तो जंगल के राजा है सबसे ताकतवर है फिर यह 10 किलों का हिरण आपके पंजे से कैसे निकल गया? शेर हंसा और बोला 'इतनी भी बात नहीं समझ सके, दोनों के 'स्टेक' में अन्तर था।' अगर मैं उसे पकड़ लेता तो मेरा एक जून का खाना हो जाता लेकिन वह अगर पकड़ा जाता तो उसकी मौत होती।

भारत व पाकिस्तान के बीच युद्ध

भारत–पाक की प्रमुख लड़ाइयों पर एक नजर–

1965 – 23 अगस्त, 1965 से पहली जंग की शुरूआत हुई। जंग के समय भारत के राष्ट्रपति सर्वपल्लीराधाकृष्णन थे और पाकिस्तान के अय्यूब खान। भारत के प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री थे और पाकिस्तान के जनरल मोहम्मद भूसा।

भारत के पास 720 टैंक थे और पाकिस्तान के पास 738 टैंक।

भारत के पास 628 तोपची थे।

1971– 3 दिसम्बर, 1971 को लड़ाई शुरू हुई। भारत के राष्ट्रपति वीवी गिरी थे और पाकिस्तान के राष्ट्रपति याह्मखान। भारत की प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी थी और पाकिस्तान के प्रधानमंत्री नुरूल अमीन। भारत के पास इससे 5,00,000 सैन्य दस्ते थे जबकि पाकिस्तान के पास इससे ज्यादा

1999– मई के महीने में इस जंग का आगाज हुआ।जंग के समय भारत के राष्ट्रपति के0आर0 नारायण थे और पाकिस्तान के जनरल परवेज मुशर्रफ। भारत के प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी और पाकिस्तान के नवाज शरीफ थे। जंग में भारत की और से 30,000 सैन्य दस्त हिस्सा ले रहे 552 तोपची। भारत के पास 7,00,000 पैदल सैनिक थे और पाकिस्तान 2,60,000 पैदल सैनिक।

- जंग के दौरान भारत के 3000 सैनिकों की मौत हुई थी, जबकि पाकिस्तान के 3800 सैनिक मारे गये थे।
- भारत के करीब 150 से 190 टैंक नष्ट हुये थे और पाकिस्तान के 200 से 300 टैंक।
- यूनाइटेड नेशंस की मध्यस्थता में सीज फायर हुआ और करीब एक महीने बाद युद्ध रूका।
- जंग के दौरान 3,843 भारतीय सैनिक मारे गये। मरने वाले पाकिस्तान सैनिकों की संख्या 9000 थी।
- 9851 भारतीय सैनिक घायल हुये थे और पाकिस्तान के 4350 सैनिक घायल हुये थे।
- 16 दिसम्बर 1971 को लड़ाई खत्म हुई।
- लड़ाई में भारत की जीत हुई और पाकिस्तानी सेवा ने समर्पण किया।

- पाकिस्तान दस्तों की संख्या 5000 थी।
- 527 भारतीय सैनिक मारे गये थे। मरने वाले पाकिस्तानी सैनिकों की संख्या 453 थी।
- 1363 भारतीय सैनिक घायल हुये थे। पाकिस्तान के 665 सैनिक घायल हुये थे।
- जुलाई के महीने में जंग समाप्त हो गयी।
- जंग में भारत ने जीत हासिल की और पाकिस्तान, सेना ने जिन क्षेत्रों पर कब्जा किया था, वहां भारत ने फिर से अधिकार स्थापित किया।

भारत–पाकिस्तान संघर्ष के कारण

कहावत है कि पड़ौसी को चुना नहीं जा सकता इसलिए सभी शान्तिप्रिय पड़ौसी की कामना करते है लेकिन भारत के मामले में स्थितियां भिन्न है पड़ौसी पाकिस्तान के साथ भारत की कई जंग हो चुकी है जिनसे अविश्वास की स्थिति उत्पन्न हो गयी है जो खत्म होने का नाम ही नहीं ले पा रही।

विवाद की वजह सुरक्षा पर विवाद

मुम्बई पर 26/11 आतंकी हमले के बाद भारत–पाक सम्बन्धों में तल्खी इतनी बढ़ गई कि भारत ने पाकिस्तान से किसी भी स्तर की बातचीत से इंकार कर दिया था। पाकिस्तान भी आरोप लगाता है कि भारत ने उसके ब्लूचिस्तान प्रान्त में गड़बड़ी फैला रखी है।

अफगानिस्तान समस्या

अफगानिस्तान में वर्चस्व की लड़ाई में लम्बें समय से दोनों देश शामिल है। पाकिस्तान को आशंका है कि वर्ष 2001 में अफगानिस्तान में उसके समर्थन वाली तालिबान सरकार के पतन के बाद भारत वहां अपना प्रभुत्व बढ़ाने की कोशिशों में लगातार हुआ है।

कश्मीर समस्या

इस पर दोनों देशों के बीच चार बार जंग हो चुकी है।

जल संकट

पाकिस्तान का आरोप है कि भारत बांध, बैराज बनाकर अप्रत्यक्ष रूप से नदियों के रूख को मोड़ना चाहता है। भारत इसका खण्डन करता है।

सियाचिन

1984 से ही कराकोरम रेंज में सियाचिन ग्लेशियर पर कब्जे के लिए दोनों पक्षों की सेनाऐं भिड़ती रही है। दोनों पक्षों ने दुनिया के इस सबसे ऊँचे रणक्षेत्र से सेनाएं उतारने के लिये समाधान तलाशने की नाकाम कोशिशें की है। भारत का कहना है कि वह जब तक यहां से अपनी सेनाऐं नहीं हटाएगा जब तक पाकिस्तान इसको औपचारिक रूप से भारत का क्षेत्र नहीं घोषित कर देता।

भारत और पाकिस्तान के बीच समस्याऐं

भारत की अपने दो विरोधियों पाकिस्तान और चीन के साथ विवादित सीमाऐं हैं पाकिस्तान के साथ जम्मू–कश्मीर में विवादि सीमा 776 किमी0 लम्बी नियंत्रण रेखा (एलओसी) है नक्शे पर इस पर सहमति है और जमीन पर यह चिन्हित है। भारत की सियाचिन में 86 किमी0 की वास्तविक जमीनी

पोजीशन लाइन (एजीपीएल) है। यह लद्दाख में एलओसी का उत्तरी विस्तार है। एलओसी पर छोटे हथियारों से नियमित रूप से संघर्ष विराम क उल्लंघन का मतलब है कि घरेलू मोर्चे पर पाकिस्तानी सेना नवाज शरीफ सरकार को संदेश दे रही है कि भारतीयों के लिए नीति का संचालन वह कर रही है।

इसके जरिये दूसरा संदेश भारत को यह दिया जा रहा है कि भले ही पाकिस्तानी सेना संघर्ष विराम है कि भले ही पाकिस्तानी सेना संघर्ष विराम को खत्म नहीं करना चाहवी भारतीय सेना नहीं दे रही है। उसको सबक सिखाने की भारतीय राजनीतिक इच्छा शक्ति की कमी 26 नवम्बर, 2008 को मुम्बई आतंकी हमले के दौरान ही स्थापित हो गई थी। सिर्फ यही नहीं उसने यह भी संदेश दिया कि उसने ऐसी कुशल परमाणु युद्ध क्षमता भी विकसित कर ली है जो भारतीय सेना के कोल्ड स्टार्ट सिद्धान्त (सैन्य अभियान) की भी परवाह नहीं करती। यह सिद्धान्त युद्ध स्थिति में 48 घण्टे के अन्द पाकिस्तान के भीतर सेना के हमले से संबंधित है। प्रमुख रूप से राजनीतिक इच्छाशक्ति और कुशल परमाणु क्षमता का अभाव एवं नए खतरों से निपटने के लिए कोल्ड स्टार्ट सिद्धान्त में संशोधन नहीं करने के कारण हमारी सेना की धार कुंद हुई है।

आतंक की बुनियादी समस्या

भारत की समृद्धि और अखण्डता पाकिस्तान की समृद्धि और अखण्डता पर निर्भर है। ये शब्द अमेरिकी राष्ट्रपति बराक–ओबामा के नहीं, अपितु पूर्व प्रधानमंत्री और भाजपा नेता अटल बिहारी वाजपेयी के है। उन्होंने ये शब्द मीनारे–पाकिस्तान की विजिटर बुक में लिखे थे। ओबामा ने भी अपनी भारत यात्रा के दौरान इसी तरह के शब्दों का उपयोग किया है। उन्होंने मुम्बई में कहा कि पाकिस्तान की स्थिरता भारत के हित में है। हालांकि ओबामा ने यह भी कहां कि 26/11 के आतंकी हमले के दोषियों को न्याय के कठघरे में लाया ही जाना चाहिये। अपने इस कथन से वह भारतीय अभिमत को सन्तुष्ट नहीं कर सके, जो चाहता था कि पाकिस्तान का नाम लिया जाए। स्पष्ट ही है कि ओबामा दिल्ली आये और प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह से मिले तो उन पर कुछ दबाव था। जब उन्होंने संसद के संयुक्त अधिवेशन को संबोधित किया तो कहा कि 'आतंकवाद जो पाकिस्तान में सुरक्षित स्थान में फल–फूल रहा है' वह स्वीकार्य नहीं है।

फिर भी उन्होंने किसी का भी पक्ष लेने से इनकार कर दिया और साफ शब्दों में कहा कि भारत और पाकिस्तान, दोनों को अपनी समस्याओं को स्वयं ही सुलझाना होगा। मेरे विचार में ओबामा को अपने मूल सतर्कतापूर्ण रवैये पर कायम रहना चाहिए था, क्योंकि उन्हें निश्चित रूप से पाकिस्तान में विश्वसनीय बने रहना चाहिए। खासतौर पर इसलिये भी कि सेनाएं अमेरिकी सेनाऐं अफगानिस्तान में आतंकवाद से संघर्षरत है और उन्हें पाकिस्तान से सक्रिय सहयोग मिल रहा है। फिर भी उन्होंने भारत और पाकिस्तान के बीच एक संतुलन तो बनाये ही रखा। जब उनसे कश्मीर के बारे में पूछा गया तो उन्होंने कहा यह लम्बे समय से लंबित एक विवाद है। अमेरिका समाधान थोपना नहीं चाहता, किन्तु यदि भारत और पाकिस्तान चाहे तो वह एक भूमिका निभाने का इच्छुक है। पाकिस्तान से प्रतिक्रिया ओबामा की कुछ टिप्पणियों पर असहजता को दर्शाती है। यद्यपि विदेश मंत्री कुरैशी ने कहा है कि इस्लामाबाद और दिल्ली को संयुक्त रूप से पाकिस्तान में आतंकवादियों के ठिकानों को नष्ट करना चाहिए, लेकिन

इस पर भारत की ओर से कोई अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं दिखाई गई। पाकिस्तान के राष्ट्रपति ने भी कहा कि वह अपनी धरती का इस्तेमाल आतंवादियों को किसी देश के विरूद्ध नहीं करने देगे, किन्तु यह तो एक ऐसी कसरत है जो पाकिस्तान पहले भी कर चुका है। दिल्ली ने रूखापन ही दर्शाया। भारत को जिस बात की सराहना करनी व समझनी चाहिए वह यह कि संभवः पाकिस्तान आतंकवाद पर शत–प्रतिशत जैसा कुछ कर पाने की स्थिति में नहीं है। वैसे भी एक के बाद एक उसके शहरों पर आतंकवादियों ने हमले किये है और दर्जनों लोगों को मौत के घाट उतारा है।

कोई चाहे तो यह तर्क दे सकता है कि यह पाकिस्तान का सत्ता प्रतिष्ठन ही था जिसने आतंकवाद की शुरूआत की थी, जो अब भस्मासुर का रूप ले चुका है। अब वह कैसे मदद कर सकेगा, जबकि आतंकवाद का जिन्न बोतल में लौटने वाला नहीं लगतात्र दिल्ली अथवा इस्लामाबाद इसे पसंद करें या नहीं करें, उनके समक्ष कोई विकल्प नहीं है। एक समय पर बांग्लादेश ने भी भारत के विरूद्ध आतंकवादियों को शरण उपलब्ध कराई थी, किन्तु शेख हसीना की सत्ता में वापसी क वाद उनके अभयारण्य समाप्त हो गये। इस्लामाबाद को भी ऐसा ही कुछ करना होगा और आतंकवाद के विरूद्ध संघर्ष का और अधिक विश्वसनीय बनाने क लिए दिल्ली को यह भरोसा दिलाना होगा। आतंकवाद की वजह से 2009 में 2,232 और 2010 में 1,902 मौते भारत में हुई। कि पाकिस्तान अधिक से अधिक जो कुछ कर सकती है, कर रही है। दूसरी और डा0 मनमोहन सिंह को भी यह अनुभूत करना चाहिये कि आतंकवाद 'टेप' की तरह नहीं है, जिसे बन्द किया जा सके। अन्यथा पाकिस्तान के प्रधानमंत्री ने उनसे आतंकवाद को वार्ता से अलग रखने का अनुरोध नहीं किया होता। गत वर्ष शर्म–अल–शेख में दोनों ही इस परह सहमत हो गये थे।

भारत में प्रबल जनमत ने प्रधानमंत्री को आगे बढ़ने की अनुमति नहीं दी। फिर भी अवरोध को तो भंग करना ही होगा। शायद वार्ता कुछ छोटे मामलो पर शुरू की जा सकती है जैसा कि ओबामा ने सुझाया है। भारत पाकिस्तान से यह स्पष्ट कर सकता है कि कश्मीर जैसी समस्याऐं तभी ली जा सकेगी जब दिल्ली को यह भरोसा हो जायेग कि इस्लामाबाद आतंकवाद से निपटने में गंभीरता बरत रहा है। दिल्ली को यह भरोसा हो जायेगा कि इस्लामाबाद आतंकवाद से निटपने में गंभीरता बरत रहा हैं दिल्ली को अपने हित होगी ताकि उसे अधिक शक्तिशाली चीन की ओर से आने वाले दबाव का प्रतिरोध करने में मदद मिल सके। अन्यथा क्षेत्र वांशिगटन और बीजिंग के बीच के बीच एक नये शीतयुद्ध से पीड़ित हो सकता है।

आतंकवाद का आर्थिक तन्त्र

अब यह बिल्कुल साफ हो रहा है कि अमेरिका और अन्य पश्चिमी देश विश्व के सर्वाधिक खतरनाक और संसाधनों से लैस आतंकी संगठनों में से एक लश्कर–ए–तैयबा पर लगाम लगाने में असफल रहे है। अगर हाल ही में सार्वजनिक किए गये अमेरिकी गृह मंत्रालय के गोपनीय दस्तावेजों को ध्यान से देखा जाये तो यह स्पष्ट होता है कि मुम्बई आतंकी हमले के बाद भी यह आतंकी संगठन न केवल बचा हुआ है, बल्कि उसने अपनी ताकत भी कई गुना बढ़ा ली है। दस्तावेजों के अनुसार यह आतंकी संगठन पचास लाख अमेरिकी डालर की रकम नई भर्ती, आतंकियों के प्रशिक्षण पर खर्च करता है, जिनकी मदद से भारत ही नहीं, बल्कि अमेरिका के खिलाफ आतंकी घटनाओं को अंजाम दिया जाता

© SHARAD

है। इस रकम को लश्कर के कंमाडों जकीउर रहमान लखवी ने खर्च किया। इस पैसे की मदद से लश्कर की आतंकी गतिविधियों के लिये हथियार और गोलाबारूद के अतिरिक्त सामग्री की खरीद की गई।

जो दस्तावेज सार्वजनिक हुये है उनके अनुसार आतंकी संगठन लश्कर–ए–तैयबा ने यह भारती–भरकम धन राशि निजी चन्दे, गैर सरकारी संगठनों और मदरसों से मिलने वाली सहायता से जुटाई। इसमें पूरे दक्षिण एशिया, मध्यपूर्व और यूरोप में फैले व्यवसाय आतंकी घटनाओं को अंजाम देने के लिये किया गया काफी पैसा सउदी अरब और कुवैत से आया, जहां लश्कर को न केवल पाकिस्तानी समुदाय में समर्थन हासिल है, बल्कि दूसरे देशों के मुस्लिमों मं भी उसकी पैठ है। इसके अतिरिक्त लश्कर को शाही परिवारों को वरहस्त भी हासिल हैं वैसे इस आतंकी संगठन का मुख्य आधार पाकिस्तान है, जहां व्यवसायी, शीर्ष, उद्यमी, किसान और अन्य पेशे से जुड़े लोग आतंकी घटनाओं को अंजाम देने के लिये उसे उदारता से धन मुहैया कराते है। यह चन्दा उगाही पूरे पाकिस्तान में वर्ष भर चलती रहती है। कभी मजहब क नाम पर तो कभी खुलकर जिहाद के नाम पर। दस्तावेजों के मुताबिक जहां इस चंदे का एक भाग का इस्तेमाल सामाजिक कार्यों के लिए किया जाता है, वहीं अधिकाधिक धन का इस्तेमाल आतंकी ढांचे को मजबूत बनाने में किया जाता है। एक रिपोर्ट मं बताया गया कि किस तरह लश्कर के सामाजिक सहायता संगठन इदरा खिदमत–ए–खल्क ने दिसम्बर 2005 में चन्दे के लिए जमात–उद–दावा क नाम की पत्रिका काटी। जमात लश्कर का मूल संगाठन हैं। इस संगठन ने साउदी अरब में एक कम्पनी के रूप में काम किया, जहां लश्कर के पैसे के लेने–देने का काम देखने वाला व्यक्ति कम्पनी के महाप्रबन्धक के साथ मिलकर काम कर रहा होगा। इस कम्पनी के जरिये लश्कर ने अपनी आतंकी घटनाओं को अंजाम देने के लिये धन जुटाने का काम किया। एक अन्य रिपोर्ट के अनुसार सउदी अरब अलकायदा, तालिबान, लश्कर और अन्य संगठनां जिनमें हमास भी शमिल है, के लिए वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने वाल महत्वपूर्ण स्थल बना हुआ। हमास हर वर्ष हज और रमजान के दौरान अपने सउदी ठिकानों से लाखों डालर की उगाही करता है। यह पैसा भी आतंक घटनाओं को अंजाम देने में खर्च किया जाता है। लश्कर का आतंकी सरगना हाफिज सईद खुद गिरफ्तारी और हत्या के भय से विदेश यात्राएं करने से परहेज करता है, लेकिन उसका रिश्तेदार और संगठन में नम्बर दो की हैसियत रखने वाला अब्दुर रहमान मक्की सउदी अरब और मध्य–पूर्व के देशों में धन की उगाही के लिए धड़ल्ले से यात्राऐं करता है। वह पाकिस्तान में नए स्कूल खोलने या मदरसों के आधुनिकीकरण के नाम पर पैसे इकट्ठा करता है। अक्सर खर्चे को बढ़ा–चढ़ाकर पेश किया जाता है ताकि इस काम के लिये मिलने वाली सहायता राशि से कुछ भाग आतंकी घटनाओं के लिये निकाला जा सके। लीक हुये दस्तावेजों के अनुसार आतंकी घटनाओं के लिये धन जुटाने का दूसरा तरीका हज यात्रियों से पैसा वसूलना है। एक दस्तावेज में बताया गया है कि इस तरीके का इस्तेमाल काले धन को सफेद बनाने के लिये किया जाता है। इसी तरीके का इस्तेमाल मुम्बई आतंकी हमले के लिए धन जुटाने में किया गया। एक अन्य दस्तावेज में इसकी पुष्टि की गई है कि किस तरह सईद और लखनी ने पूरे दक्षिण एशिया में आतंकी घटनाओं की साजिश रचने, उनका निर्देशन करने और उन्हें अंजाम देने का काम किया। मुम्बई हमला भी लश्कर की इन आतंकी घटनाओं में शमिल है।

© SHARAD

आखिर इससे बड़ी विडंबना कोई और क्या होगी कि लश्कर शायद दुनिया का एक मात्र ऐसा आतंकीवादी संगाठन है जिसे सरकारी मदद मिलती है। पिछले वर्ष पाकिस्तान में पंजाब सरकार ने लश्कर के मूल संगठन जमात–उद–दावा को लगभग दस लाख अमेरिकी डालर का अनुदान प्रदान किया और वह भी तब जब जमात–उद–दावा को संयुक्त राष्ट्र और अमेरिका के साथ–साथ भारत और कई अन्य देशों ने प्रतिबन्धित कर रखा है। चूंकि यह स्पष्ट है कि अन्तर्राष्ट्रीय दबाव के बावजूद पाकिस्तान अपने सामरिक उपकरण अर्थात् लश्कर जैसे आतंक संगठन को कमजोर करने के लिये कुछ नहीं करने वाला इसलिये यह जरूरी है कि अंतर्राष्ट्रीय समुदाय ऐसे आतंकी संगठनों के धन के लेन–देन पर अकुंश लगाने के लिए कहीं अधिक ताकत से प्रयास करें। यह कार्य वैश्विक स्तर पर होना चाहिए।

पाकिस्तान की बनावट को ध्यान में रखते हुये यह जरूरी हो गया है कि हम उसके माजूदा संकट में सहानुभूति के साथ सक्रिय योगदान के बारे में भारत की तैयारी को बल पहुंचाऐं। पाकिस्तन के संकट का लाभ चीन और अमेरिका को भले मिलता हो लेकिन हमारे हिस्से में बराबर नुकसान आया है। मौजूदा घटनाक्रम पाकिस्तान को दुखद मोड़ पर खड़ा कर चुका है क्योंकि अगर जनतंत्र की आड़ में बढ़ रही भ्रष्टाचारी जमाते रोकी जाऐ तो संवैधानिक संकट पैदा होगा, जिसका समाधान पांरपरिक तौर पर सैनिक तानाशाही रही है। वही अगर सेना और न्यायपालिका द्वारा उठाये गये ऐतराजों को ध्यान में रखा जाये तो मौजूदा जनतंत्र को को तत्काल स्थगित कर पाकिस्तान नव–निर्माण की तरफ मोड़ना होगा। दोनों ही परिस्थितियों में इस बात की पूरी संभावना है कि कट्टरवादी जमाते अपनी संगठन शक्ति और वैचारिक उग्रता का लाभ उठाकर पाकिस्तान की राष्ट्र निर्माण प्रक्रिया को कुछ और कमजोर तथा बाकी पड़ासियों के लिए कुछ अधिक चिंताजनक बना देगी।

आखिर पाकिस्तान के राष्ट्रनिर्माण का रास्ता इतना उबड़–खाबड़ क्यों होता जा रहा है। पाकिस्तान की अगर हम अंग्रेजी राज से मुक्ति पाये अन्य राष्ट्रों से तुलना करें ता देखगें कि न तो पाकिस्तान ने अपनी राज सत्ता को ठीक से विकसित किया है, यानि उसकी शासन व्यवस्था न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका के बीच में स्वस्थ्य संतुलन नहीं बन पाया है और न ही पाकिस्तानी जनता का अपने शासन वर्ग के साथ संतुलित संबंध ही विकसित हो सका हैं यह देश के रूप में उसकी विफलता हैं।

इसके मूल में हम तीन कारण होते है। पहला तो पाकिस्तान की वैचारिक बुनियाद में जनतंत्र और नागरिक अधिकारों के लिये खुली प्रतिबद्धता का अभाव रहा है। पाकिस्तान के राष्ट्रीय लक्ष्यों में ईमान, इत्तेहाद और जंजीम यानी आस्था, एकता और अनुशासन इन तीन मूल्यों को महत्व दिया गया हैं इसकी तुलना में भारत में जब हम संविधान की तरफ देखते है तो यहां सामाजिक न्याय, आर्थिक की तरफ देखते है तो यहां सामाजिक न्याय, आर्थिक न्याय और राजनीतिक न्याय की तलाश में जनतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद और राष्ट्रीय एकता के आधार पर एक साथ चलन के सपन हमारी बुनियाद में स्थापित मूल्य की तरह रहे है।

पाकः सामाजिक समीकरण के चार स्तंभ

इस समय पाकिस्तान का जो सामाजिक समीक़रण है, उसमें चार शिखर या चार स्तंभ है। मध्य वर्ग जो लगभग तीन करोड़ लोगों का है। सेना व धर्म गुरूओं के निर्देश में स्थापित मस्जिद,

मदरसा, मुल्ला और सक्रिय आस्तिक लोगों की जमात। इन चारों के परस्पर संबंध इसब बात से तय नहीं होते कि पाकिस्तान एक मजबूत देश है। वह इससे तय होता है कि पाकिस्तान में कई बोलिया, कई प्रदेश और एक धर्म होने क बावजूद कई बिरादरियां और कई आस्था समूह हैं पाकिस्तान का सामाजिक ढांचा उसके राजनीतिक ढांचे के प्रति समर्पण भाव रखने में विफल रहा है। भारत में भी यह संकट आया जब आपातकाल की घोषण की गई लेकिन तत्काल अपनी तमाम विविधताओं और तमाम विषमताओं के बावजूद जनसाधरण ने जनतंत्र के पक्ष में लामबंदी का काम किया।

पाकिस्तान की सैनिक सत्ता की भी अपनी एक विशिष्ट ताकत है। लगभग 6 लाख सैनिकों ओर उतने सुरक्षित समूहों के बल पर खड़ी पाकिस्तानी सैनय शक्ति के मूल में भारत और पाकिस्तान के बची 1948 से कारगिल तक हुये चार युद्धों का खून से सना इतिहास है। पाकिस्तान की कल्पना में सेना की संभवतः कोई भूमिका नहीं थी। लेकिन आज पाकिस्तान की असलियत में सेना राष्ट्र रक्षा क लिये नेताओं से ज्यादा भरोसे की चीज मानी जाती है। इसलिये पाकिस्तान में जब–जब राजनीतिक नेतृत्व विफल हुआ है, सैनिक नेतृत्व ने हस्तक्षेप किया है और समाज ने उनको बहुत दिनों तक बर्दाश्त भी किया है। मिर्जा से लेकर मुशर्रफ तक यह सिलसिल चलता रहा है।

बोलियों में भी बंटने के बीज

पाकिस्तान के सन्दर्भ में एक और पक्ष ध्यान में लाने की जरूरत है और वह है क्षेत्रीयता का सवाल। पाकिस्तान की कुल आबादी में भाषाओं के आधार पर परस्पर व्यापक असतुंलन है। पंजाबी भाषी 47 फीसद, सिन्धी और पश्तों बोलने वाले यानी भारत से गए हुए तथाकथित शरणार्थी, प्रवासी या मोहाजिर 7 फीसद के लगभग हैं। अब इसके बीच में परस्पर समन्वय के लिये अंग्रेजी भाषा का इस्तेमाल हो रहा है। अंग्रेजो संपर्क भाषा के रूप में पाकिस्तान के मध्य वर्ग के तो काम की चीज है लेकिन पाकिस्तान के जनसाधारण के लिए यह एक दूरी बनाये रखने का भी कारण बनी हुई हैं।

पाकिस्तान का आर्थिक ढांचा भी कुछ ऐसा है, जिसमें आने वाले दिनों के लिये जनतंत्र के पक्ष में बहुत आशा नहीं बनती है क्योंकि पाकिस्तान की आबादी का बड़ा हिस्सा कृषि पर आधारित है। लेकिन भारत की तरह वहां भी खेती का राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में भूमिका लगातार घटर रही है और सेवा क्षेत्र की बढ़ रही है। देशी पूंजी निर्माण की तुलना में विदेशी पूंजी का महत्व बढ़ रहा है। ऐसे में एक आधी–अधूरी तस्वीर पाकिस्तान की राजनीति में प्रतिबिंबित होती है। इसको पूरा और बेहतर बनाने के लिये जनतंत्र की जरूरत है लेकिन पाकिस्तान का दल और तन्त्र भी अभी बहुत स्वस्थ नहीं हो पाया है।

क्षेत्रीय पार्टियों की सोच अलगाववादी

मुख्य दल के रूप मं भुट्टों परिवार की पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी और नवाज शरीफ की पार्टी के अलावा बाकी पार्टियों का क्षेत्रीय अस्तित्व ही है। क्षेत्रीय स्तर पर चल रही पार्टियों मूलतः अलगाववादी स्वर की प्रवक्ता बनी हुई हैं इसलिऐ सिंध, बलूच और पाश्तों आधार वाली पार्टियों पाकिस्तान की राष्ट्रीय राजनीति में गठाबन्धन की सहयोगी तो बन पाते है लेकिन पाकिस्तान के विकेन्द्रीकरण के लिये और पाकिस्तान के संघीय ढांचे को बल पहुंचाने के लिये भरोसे के नहीं माने जाते है। तो राष्ट्रीय पार्टियों और सेना इन्हीं दो के बीच में पाकिस्तान की सत्ता का फुटबॉल चलता है। कभी गेंद सेना के वाले में और कभी गेंद राष्ट्रीय पार्टियों के पाले में। राष्ट्रीय पार्टियों का यह

© SHARAD

संकट है कि वह नेतृतत्व की निरन्तरता नहीं बना पा रही है। जुल्फीकार अली भुट्टो, बेनजीर भुट्टो और अब जरदारी के रूप में पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी को पिछले 30 साल में तीन तरह के नेतृत्व मिले और इनमें से दो का अत्यन्त दुखद अंत हुआ। भुट्टो साहब को सेना के तानाशाहों ने फांसी दी ओर बेनजीर भुट्टों को रहस्यमय परिस्थितियों में अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। पता नहीं, जरदारी साहब का भविष्य क्या है।

संकट से भारत का नुकसान ज्यादा

इसके अलावा पाकिस्तान की सामाजिक व्यवस्था हमें यह भी ध्यान देना होगा कि गरीबी, निरक्षरता और आतंकवाद; ये तीन बेहद पीड़ाजनक समस्याऐं है। पाकिस्तान के जनसाधारण के अस्तित्व के लिये आज बहुत सारे सवाल है जो जनतंत्र की तलाश में उर्जा लगाना या अपने को खतरे में डालना पाकिस्तान के अवाम के लिए शायद सर्वोच्च प्राथमिकता नहीं बन पाई है। इसलिये आज पाकिस्तान की बनावट को ध्यान में रखते हुये यह जरूरी हो गया है कि हम उनके मौजूदा संकट में सहानुभूति सक्रिय योगदान के बारे में भारत की तैयारी को बल पहुंचाऐं। पाकिस्तान के संकट का लाभ चीन और अमेरिका को भले मिलता हो लेकिन हमारे हिस्से में बराबर नुकसान ही आया है। पाकिस्तान ने प्रायः अपने अंदरूनी संकट के समाधान के तौर पर भारत से मोर्चा खोलने में तलाशा है। अगर उन्होंने सैनिक हमला नहीं भी किया तो कश्मीर में और शेष भारत में आतंकवाद को शह देने में ही अपना समाधान तलाशा है।

इसलिए पाकिस्तान की स्थिरता भारत के लिये एक निजी जरूरत है। पाकिस्तान की स्थिरता में सैनिक स्थिरता या सैनिकशाही के जरिये पैदा हुई अस्थिरता भारत के लिए युद्ध का खतरा पदा करती है। हाँ, जब–जब लोकतांत्रिक जमाते पाकिस्तान में मजबूत हुई है, भारत से विवाद बढ़ा है और राष्ट्र संघ में उनके भाषण भड़काऊ होते गये है। उन्होंने भी किये है लेकिन हमारी सुरक्षा के लिये वे कम खतरनाक रहे है। इसलिये आज जरूरी है कि पाकिस्तान को हम उसकी भाषागत विविधताऐं, उसकी आर्थिक–चुनौती और उसकी राजनीतिक कमजोरियों को सहानुभूति के साथ देखे और उसके समाधान में केवल चीन और अमेरिका को ही सक्रिय नहीं होने दे बल्कि हमारी भी एक सक्रिय भूमिका होनी चाहिए।

भारत और पाकिस्तान के बीच विस्थापित का मुद्दा

जमी हुई झीलों और बर्फबारी के खुशगवार मौसम में गत दिनों कश्मीर की चर्चाएं अचानक गरमा गई। प्रधानमंत्री ने अपनी विदाई प्रेस वार्ता में मुशर्रफ के जमाने में कश्मीर को लेकर समझौते की जिस संभावना का जिक्र किया वहीं हलचल मचाने के लिए काफी था। साथ ही कश्मीर पर प्रशान्त भूषण के आत्मनिर्णय जैसे बयानों न हमें नेहरू युग की पुरानी यादें फिर ताजा करा दी जब जनमत संग्रह का प्रस्ताव लेकर हम खुद संयुक्त राष्ट्र की चौखट पर दस्तक दे रहे थे। किसी से पीछे न रहते हुऐ अमर अब्दुला ने पाकिस्तानी पत्रकार के इण्टरव्यू में कह दिया कि कश्मीर समस्या का एकमात्र समाधान तब होगा जब सरहदें अर्थहीन हो जाय। उन्होंने यूरोपियन यूनियन जैसी मुक्त व्यापार व्यवस्था की वकालत की। सीमा व्यापार की बानगी यह है कि पाकिस्तान स बादाम की खेप में करोड़ों की

© SHARAD

हेरोइन भेजी जा रही है। सीमा निष्प्रभावी होने की बात का तात्पर्य यह हुआ कि कश्मीर किसी का नहीं। ऐसा मजाक 1947 से ही चल रहा है। 1947 में कश्मीर क जनमत संग्रह के प्रस्ताव के पीछे नेहरू की सोच शायद यह रही हो कि वह लोकतांत्रिक युग पुरूष के रूप में राष्ट्रीय सीमाओं का अतिक्रमण कर अन्तर्राष्ट्रीय महानताओं की ओर अग्रसर हो जायेंगे। भारत उनकी अन्तर्राष्ट्रीय महत्वाकांक्षाओं का रिप्रंगबोर्ड बना। उनकी इस वैश्विक उड़ान का जहाज 1962 में जब चीनी चुनौती की सख्त जमीन पर आ गिरा तब कहीं जाकर आदर्शवाद की यह यात्रा समाप्त हुई। तब तक झेलम में बहुत बह चुका था। जिस दौर में दुनिया के देश अपने राष्ट्रीय हितों को प्राथमिकता दे रहे थे, हमने विश्व नेतृत्व के आकाश को अपना लक्ष्य बनाया। हम दुनिया में शांति के बड़े ठेकेदार बनने लगे और हमारे पैरों के नीचे से जमीन सरकती गई कश्मीर किसका है? यह सवाल जिसे बहुत पहले दफन हो जाना चाहिए था, आज भी जिंदा है।

सवाल इस मुल्क से है कि कश्मीर हमारा जुनून क्यों नहीं बना? नेताओं द्वारा अक्सर की जाने वाली घोषणा की कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है, कि असलियत क्या है? अभी कल ही विधिवेता एवं लेखक एजी नूरानी ने इस्लामाबाद में आयोजित एक अंतर्राष्ट्रीय कार्यशाला में कश्मीर में जनमत संग्रह का पक्ष लिया। इन्होंने बहस को वापस वहीं पहुंचा दिया है जहां से हम चले थे। जनमत के भय के कारण अभी तक संभव नहीं हो सका वरना हमारे नेता कश्मीर को कब का बांट चुके होते। कश्मीर का भारत में हुआ विलय अन्य 563 रियासतों के भारत में हुए विलय से भिन्न नहीं था। जब न महाराजा हरी–सिंह और नही शेख अब्दुला पाकिस्तान का हिस्सा बनाना चाहते थे तो विशेष दर्जे या धारा 370 का औचित्य ही क्या था? अक्टूबर 1947 में श्रीनगर के निकट शालातेगं में भीषण हार के बाद भाग रहे कबायली हमलावरो का पीछा करती सेनाओं को उड़ी में रोक दिया गया। यही से हमारी कश्मीर समस्या की शुरूआत हुई। जनवरी, 1948 को अगर हम संयुक्त राष्ट्र न गए होते तो कश्मीर उसी तरह मुक्त हो जाता जैसे बाद में हैदराबाद, फिर गोवा मुक्त कराया गया एक वर्ष बाद यानी एक जनवरी 1949 को जब युद्ध विराम की घोषणा हुई, उस वक्त भी शेष कश्मीर के मुक्ति के युद्ध में सेनाएं विजय पथ पर थी। साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि गवर्नर जनरल माउण्टबेटन का ब्रिटिश एजेण्डा यह था कि कश्मीर पर्वतीय क्षेत्र, विशेषकर गिलगिट बालतिस्तान पाकिस्तान के कब्जे में रहे। शीत युद्ध के उस प्रारंभिक काल में रूस–चीन की गतिविधियों पर नजर रखने के लिये कश्मीर के पर्वतीय क्षेत्रों में सैन्य अड्डे स्थापित करने का अमेरिकी–ब्रिटिश का उद्देश्य समझ में आता है। अगर पाक अधिकृत कश्मीर भी आजाद हो गया होता तो यह संभावना समाप्त हो जाती और अमेरिका निगाह में कश्मीर और फिर पाकिस्तान भी, सामारिक–राजनीतिक दृष्टि से महत्वहीन हो गया होता। उस स्थिति में कश्मीर समस्या की बुनियाद ही खत्म हो गई होती। पाक अधिकृत कश्मीर के बने रहने से कश्मीर आज दो भागों में विभाजित है और कश्मीर समस्या कायम है।

बहरहाल, आगे हम क्या कर रहे है? प्रारम्भ से ही हमारा रूख रक्षात्मक रहा है। जब पाकिस्तान कारगिल की चोटियों पर कब्जा करता है तो उसे परवाह नहीं होती कि हम परमाणु शस्त्र सम्पन्न देश है, लेकिन जब हमारी सेनाऐं अपनी भूमि खाली कराने के लिए एलओसी के पार जाना चाहती ह तो हमारे राजनेता डर जाते है कि पाकिस्तान के पास परमाणु शस्त्र है। हमारी राजनीतिक

बिरादरी तो अब मांग भी नहीं करती कि पाक अधिकृत कश्मीर खाली किया जाए, लेकिन देश की जनता से कहां जाता है कि कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है। इच्छाशक्ति के बगैर कश्मीर को भारत का अभिन्न अंग कहते रहना राजनीतिक लफ्फाजी बन जाती है। सत्ताएं बदलती भी है। एक जमात जाती है और दूसरी आती है, लेकिन हमारी कायरता बरकरार रहती है, उसमें कमी नहीं आती। 1971 के युद्ध में हम विजयी देश थे, लेकिन शिमला वार्ताओं में हमने पाकिस्तान के सामने के खुद ही युद्धविराम रेखा को अंतर्राष्ट्रीय सीमा के रूप से मानने की पेशकश रखीं चूंकि देश इस बंटवारे पर सहमत न होता इसलिये युद्ध विराम रेखा को अंतर्राष्ट्रीय सीमा के रूप में मानने की पेशकश रखी। चूंकि इस बटवारे पर सहमत न होता इसलिये युद्ध विराम रेखा का नाम बदल कर (लाइन ऑफ एक्युअल कंट्रोल) देते हुए इस ओर इशारा किया गया। हारे हुए भुट्टो शिमला से हमें मूर्ख बनाकर चले गए। दूसरी ओर हमने मान लिया कि कश्मीर समस्या का समाधान हो चुका है। जब पाकिस्तान प्रयोजित खालिस्तानी और कश्मीर आतंकवादी अभियान चले तब हम समझ पाए कि हम कितन बड़े मूर्ख हैं मुशर्रफ फार्मूला जिसकी कभी चर्चा हुई थी, इसी विभाजन के विचार को पाकिस्तान के पक्ष में ले जाता हे। उन्होंने कश्मीर को पांच क्षेत्रों में चिह्नित किया था। जाहिर है हिन्दू–बौद्ध बहुल जम्मू व लद्दाख से उनका कोई वास्ता न होता। पाक अधिकृत कश्मीर उनके पास है ही। शेष कश्मीर घाटी व डोडा क्षेत्र को वह समझौते के तहत पाकिस्तान के लिए चाहते रहे होगें। यह प्रस्ताव मूलतः कश्मीर के धार्मिक विभाजन की बात करता है।

पाकिस्तान ने अधिकृत कश्मीर का 2000 वर्ग किमी0 क्षेत्र सन् 1973 में चीन के हवाले कर दिया। जाहिर है कश्मीर उनका सार्वभौम भाग नहीं, बल्कि एक उपनिवेश है, जिसे जरूरत पड़ने पर पड़ौसी को बांटा जा सकत है। कश्मीर का एक भाग चीन को दे दिया जाना कश्मीरी अलगाववादियों के लिय कभी मुद्दा नहीं बना। दूसरी ओर हमारी कश्मीरी नीति कभी असलियत को जमीन पर नहीं चली। हमारे नेताओं ने रास्तों की खोज में मुश्किल बढ़ाई ही है। कश्मीर पर हमारी यथा स्थिति नीति ही मुख्य समस्या है। बहस और वार्ताओं ने क्या कभी कोई समाधान दिया है?

भारत व पाकिस्तान के बीच मुद्दे

सन् 1948 में जल से कश्मीर विवाद शुरू हुआ है, तब से सोमा पर दोनों के बीच क्रांस फायरिंग होना लगभग आम सी बात है। हालांकि यह भी सच है कि भारत पाकिस्तान के बीच 26 नवम्बर, 2003 को हुये सीजफायर पैक्ट के बाद सीमा पर हिंसा को लगभग समाप्त कर दिया गया, फिर चाहे वह लाइन ऑफ कंट्रोल हो या सियाचिन। गोलीबारी की छाटी–मोटी घटनाऐं दो सेनाओं के बीच की जटिलताओं और असंवादहीनता का नतीजा मानी जा सकती है। लेकिन लांस नायक सुधाकर सिंह की हत्या और लांस नायक हेमराज सिंह के सिर का कलम किया जाना साफ संकेत है कि इस्लामाबाद स्थिति सुधारने की बजाय बिगाड़ने की कवायद कर रहा है। दरअसल यूरी क्षेत्र की 19वीं डिविजन के भारतीय सेना के कमाण्डर्स ने चुरूंधा गांव की निगरानी के लिए एक नया बंकर बनाया था। चुरूधा गांव एलओसी की सीमा से सटा गांव हैं सीजफायर पैक्ट 2003 के अनुसार दोनों सेनाऐं लाइन ऑफ कन्ट्रोल के 150 मीटर के दायरे में काई नया बंकर नहीं बना सकती। भारतीय सेना के नए बंकर को पाकिस्तानी सेना ने इस पैक्ट का उल्लंघन माना, जबकि भारतीय सेना का कहना था कि वह अपन दायरे में काम

कर रहे है। इसी भ्रम की वजह से पाकिस्तानी सेना ने फायरिंग की। चूंकि पाक सेना ने फायरिंग के लिए मशीनगनो और दूसरे भारी हथियारों का इस्तेमाल किया, इसलिए चुरूंधा गांव के निवासी आसानी से उन गोलियों का निशाना बन गये। गौरतलब है कि 16 अक्टूबर को हुई गोलाबारी पूरी तरह से रूक गई। वर्तमान में जो कुछ हो रहा है, उसके मूल में 16 अक्टूबर को हुई तीन नागरिको की मौत ही है। हालांकि भारतीय सेना इस मुद्दे पर पूरी तरह से खामोश रही। सूत्रों के अनुसार इसके बाद भारतीय सेना ने बंकर के लिये सुरंग बनाने का काम शुरू कर दिया। जब पाक सेना को इसकी जानकारी मिली तो उसने फिर से गोलीबारी शुरू कर दी, जिसका मकसद इस बंकर का नुकसान पहुंचाना था। जनवरी की 6 तारीख को पाक सेना ने यह आरोप भी लगाया कि भारतीय सेना ने उनके एक सिपाही को मार डाला है और एक को बुरी तरह से जख्मी किया है। पाकिस्तानी सेना के सिपाहियों की मौत के बाद ही स्थिति बिगड़ी और दोनों सेनाओं के बीच गोलीबारी की स्थिति बनी, जिसमें एक और पाकिस्तानी सिपाही की जान गई। इसके बाद सुबह के कोहरे का फायदा उठाते हुए भारत के दो सिपाहियों को पकड़ लिया गया, जिन्होंने लाइन ऑफ कंट्रोल के पास पोजिशन ली हुई थी। भारतीय प्रधानमंत्री के पूर्व विशेष राजदूत श्याम सरन का कहना है कि इन सबके बावजूद यूपीए सरकार ने कोशिश की कि सारे मामले को शान्त करके टेंशन को खत्म करके, लेकिन दोनों देश की सेनाओं के लिए यह भी जरूरी है कि वह आपस में मिल कर बात करें। प्रधानमंत्री के कार्यालय ने दूरदर्शिता से स्थिति को देखा। दरअसल वे नहीं चाहते थे कि रावलपिंडी हेडक्वार्टर के हाथों का खिलौना बन कर कोई ऐसा कदम उठाऐं, जिससे पाकिस्तान में होने वाले आम चुनावों में भारत को फिर से विलेन के रूप में स्थापित किया जा सके। नई दिल्ली में बैठे लोग जानते है कि जनरल अशफाक परवेज राना की विश्वसनीयता बढ़ाने में इस्तेमाल करेंगे। चूंकि यूएस सेना अगले साल अफगानिस्तान से जाने की तैयार कर रही है, इसलिए भारत नहीं चाहता है कि कयानी से कोई बहाना मिले, जिससे वह पश्चिमी सीमा पर लगी सेना को उत्तरी सीमा पर तैनात कर दे।

मजहबी हिंसा की हकीकत

आज मजहब के नाम पर सबसे ज्यादा हत्याऐं कौन कर रहा है और हिंसा में प्राण खोने वाले किस मजहब के नाम पर हिंसा करने वाले और उस हिंसा के बदकिस्मत शिकार एक ही मजहब–इस्लाम के है। दुनिया के किसी भी हिस्से में क्या कभी मजहब के नाम पर इस तरह एक ही सम्प्रदाय में हिंसक टकराव की इतनी घटनाऐं हुई है? कैथोलिक चर्च बनाम प्रोटेस्टेट चर्च के बीच के हिंसा टकराव के एक कालखण्ड के अपवाद को छोड़ दे तो मजहब के नाम पर हिंसा दूरसे मतों–पंथों में नहीं हुई। मिस्त्र में साल भर से हिंसा जारी है तो दूसरी ओर सीरिया में पिछले दिनां रासायनिक हमले में 1300 लोग मारे गये। इन सारी जगहों पर मुस्लिम अपने ही स्वधर्मियों का खउून बहा रहे है। इस जानलेवा हिंसा के पीछे क्या प्रेरणा है? वह कौन सी विचारधारा है जो इस विकृत मानसिकता को पुष्ट करती है? क्यों मिस्त्र, सीरिया, ईरान, ईराक, अरवैजान, अल्जीरिया, बहरीन, लेबनान, नाइजीरिया, बांग्लादेश पाकिस्तान आदि। मुस्लिम बहुल देश मजहबी हिंसा में झुलस रहे है। मिस्त्र की राजधानी काइरों में एक मस्जिद को मुस्लिमों के एक गुट के कब्जे से मुक्त करानें के लिए सुरक्षा बलों को काईवाई करनी पड़ी। इस घटनाक्रम में सौकड़ों लोग मारे गए। कल्पना कीजिए यदि भारत में ऐसी स्थिति आती तो क्या होता?

फलस्तीन में इजराइली सेना के हाथों मारे जाने वाले मुस्लिमों के लिये जो स्वयंभू मानवाधिकारी और बुद्धिजीवी भारत की सड़कों पर नारेबाजी करते है वे आज मध्य–पूर्व के देशों में फैले गृहयुद्ध पर खामोश क्या है?

पूरी दुनिया की मुस्मिल आबादी में सुन्नी 80–90 फीसदी है, जबकि शिया 10 से 20 फीसद के बीच हे। किन्तु जहां कहीं भी शिया या सुन्नी बहुसंख्या में है वे दूसरे को खत्म करने पर आमादा है। पाकिस्तानी संगठन सिपह–ए–मुहम्मद को ईरान सैन्य और वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराता है तो साउदी अरब सुन्नी देवबन्दी, लश्करे झांगवी और बहबियों को अकूत धन देकर हिंसा के लिये प्रेरित करता है। पाकिस्तान में हिन्दुओं और सिक्खों की जनसंख्या विभाजन के समय 20 फीसद से अधिक थी, जो आज 2 फीसद से भी कम रह गई हैं या तो उनका बलात मतातरण कर उन्हें मुसलमान बना दिया गया। हिन्दु और सिक्खों की संपत्तियों पर कब्जा करने के बाद अब मुस्लिम समुदाय के गैर–सुन्नी मतों को निशाना बनया जा रहा है। पाकिस्तान में सुन्नियों के हाथों शियाओं की हत्याऐं रोज खबरें बन गई है। विगत जनवरी–फरवरी में ढाई सौ शिया मारे गये। क्वेटा में 12 जनवरी को हुये शियाओं के नरसंहार के लिए अहल–ए–हदीस नामक जिहादी सुन्नी संगठन जिम्मेदार है, जिसे साऊदी अरब पोषित करता है। शिया जुल्फिकार अली भुट्टों को अपदस्थ कर मारने वाले सुन्नी जिया उल–हक के शासनकाल में मजहबी चरमपंथ को खूब पोषित किया गया है। जिया उल–हक के समय में ही ईशनिंदा कानून बना, जिसके अंतर्गत इस्लाम या अल्लाह पर प्रश्न खड़ा करने वालों के लिये मौत की सजा निर्धारित हैं यहां गौरतलब बात यह है कि शिया और सुन्नियों के बीच तनाव की वजह ही पैगम्बर साहब के उत्तराधिकारी को लेकर है।

कश्मीर का दर्द और सियासत

जम्मू कश्मीर के मुख्यमंत्री उमर अब्दुल्ला कश्मीर को लेकर केन्द्र के रवैये से दुखी है। उन्होनें हाल में कहा कि केन्द्र की तरफ से कश्मीर मसले के राजनीतिक पहलुओं को संबोधित करने की कोई कोशिश नहीं दिखाई दे रही हैं लगता है कि केन्द्र ने मान लिया है कि कश्मीर में अब कोई मसला नहीं है। वर्ष 2008 और 2010 में अलग–अलग मुद्दों और मौकों पर कुछ समय के लिये भड़के तूफानी जनाक्रोश को छोड़ दे, तो बीते कुछ वर्षों से कश्मीर में अपेक्षाकृत शान्ति रही है। पर इसका राजनीतिक सुदृढ़ीकरण नहीं किया जा सका। राजनीतिक नेतृत्व की यह सबसे बड़ी विफलता है।

संभव है, उमर ने हताशा में केन्द्र से नाराजगी जताई हो। पर उनकी नाराजगी को किस रूप में लिया जाये? क्या यह सिर्फ कश्मीरी अवाम को लुभाने के लिये है? कश्मीर में नवम्बर, 2014 से पहले विधानसभा के चुनाव होने है? कश्मीर में नवम्बर, 2014 से पहले विधानसभा के चुनाव होने है। ऐसे में उमर सारा कुसूर केन्द्र के मत्थे क्यों न मढ़े। पर उन्हें नहीं भूलना चाहिए कि वह ऐसे मुख्यमंत्री है, जिनकी पार्टी केन्द्र की सरकार में हिस्सेदार ह। उनके पिता फारूक अब्दुल्ला स्वयं एक वरिष्ठ केन्द्रीय मंत्री है। ऐसे में कश्मीर मोर्चे पर केन्द्र की विफलताओं में क्या उमर या फारूक अब्दुल्ला अपनी हिस्सेदारी या जिम्मेदारी से पल्ला झाड़ सकते है। पर यूपीए के बारे में यह बात पूरी तरह सच है कि उसने अपने नौ वर्षों के कार्यकाल में कश्मीर मसले के राजनीतिक समाधान के लिए ठोस पहल करने के बजाय, परिस्थितियों के स्वतः अनुकूल होते जानें का नियतिवादी रवैया अपनाया। जहां तक कश्मीर

© SHARAD

मसले के राजनीतिक समाधान के लिये अपेक्षित समझदारी का सवाल है, वह एनडीए के मुकाबले यूपीए के मौजूदा के वाद पधानमंत्री मनमोहन सिंह ने तत्कालीन पाकिस्तानी राष्ट्रपति परवेज मुशर्रफ के साथ अपनी हवाना मुलाकात में जैसी कूटनीतिक शुरूआत की, उससे कश्मीर मसले पर नई पहल के सकेंत मिले थे, पर बात आ–गई हो गई।

कश्मीर मसले पर ठोस और सार्थक पहल के लिये जरूरी है कि समस्या के बुनियादी स्वरूप को समझा जाये। यह बात भारत, पाकिस्तान और कश्मीरी अलगाववादी, अच्छी तरह समझते है कि 66 साल पुरानी यह समस्या दो स्तरीय है। एक तो कश्मीर के अन्दर शासन से संबधित है और दूसरी दोनों तरफ के सरहदी–विवाद से से जुड़ी हैं। कश्मीर का एक बड़ी हिस्सा आज भी पाकिस्तान के पास है, जिसका सदर मुकाम मुजफ्फराबाद है। कश्मीर में आतंकी और अलगाववादी गतिविधियों के संचालन के लिए इस इलाके में भी इफ्रास्ट्रक्टर और मॉडयूल्स खडे किए गये है।

यह बात सही है कि अमर अब्दुल्ला ने अपने पिता के मुकाबले शासन से जुड़े मसलों पर ज्यादा गंभीरता दिखाई। उन्हें राज्यपाल एन0एन0 वोहरा के रूप ने एक समझदार मार्गदर्शक भी मिला है, जो स्वंय कश्मीर समस्या की तमाम परतों को अच्छी तरह से समझता है। पर कई बड़े मसले तो केन्द्र द्वारा सबोंधित होने है। बीते नौ वर्षों के दौरान यूपीए नेतृत्व ने समस्या के अध्ययन और समाधान की दिशा सुझाने के लिये दो पहल की। यूपीए–1 कार्यकाल में कश्मीर पर पांच कार्यसमूह बनाए गए थे, जबकि यूपीए–2 में दिलीप पडगांवकर की अध्यक्षता में तीन सदस्यीय वर्ताकार समिति बनाई गई थी। वस्तुतः दिलीप कमेटी का गठन घाटी में भड़के राजनीतिक जनाक्रोश को ठण्डा करने के मकसद से किया गया था। इन कार्य समूहों और कमेटी की रपथे नार्थ ब्लॉक और साउथ ब्लॉक स्थित सरकारी अलमारियों में बंद पड़ी है। इससे पहले वर्ष 2000 के जून में जम्मू कश्मीर विधानसभा ने स्वायत्ता पर एक प्रस्ताव पारित करके केन्द्र के विचारार्थ भेजा था। तत्कालीन एनडीए सरकार ने उसे देखने से भी इन्कार कर दिया। उसके कुछ ही समय बाद उमर विदेश राज्यमंत्री बन गए। जम्मू–कश्मीर में उनके पिता मुख्यमंत्री थे। पर इन दोनों ने एनडीए नेतृत्व पर दबाव बनाने के बजाय कुर्सी से चिपके रहना श्रेयस्कर समझा। उसी इतिहास की अब पुनरावृत्ति हो रही है। बस चरित्र और कुर्सिया बदल है। उमर श्रीनगर के सूबेदार है और फारूक साहब केन्द्र के वजीर है।

भारतीय सीमा पर पाकिस्तान की अशान्ति का सवाल

भारत और पाकिस्तान एक–दूसरे के खिलाफ संघर्ष विराम के उल्लंघन का आरोप लगा रहे है। इस महौल में अगले महीने न्यूयार्क में संयुक्त राष्ट्र महासभा की बैठक के दौरान पाकिस्तान प्रधानमंत्री नवाज शरीफ से मनमोहन सिंह की प्रस्तावित मुलाकात के मसले पर भारत ने खामोशी अख्तियार कर रखी है। पाकिस्तान में चुनाव के दरम्यान नवाज शरीफ ने भारत के साथ दोस्ताना रिश्तों का वादा किया था और प्रधानमंत्री बनने के बाद भी इसी भावना को व्यक्त करते है। इसके विपरीत पाकिस्तानी सेना ने न सिर्फ नियंत्रण रेखा (एल.ओ.सी.) पर दबाव बनाया बालिक अफगानिस्तान में भारतीय हितों को भी प्रवाहित करने की कोशिश की। तीन अगस्त को जलालाबाद में भारतीय कासुंलेट पर हमला उसकी मिसाल है। पाकिस्तान के लिये अफगानिस्तान काफी हद तक भू–रणनीतिक महत्व रखता है। उसकी दशकों से भारत को संतुलित रखते हुए अफगानिस्तान में अपने 'रणनीतिक लाभ' के

लिये भारतीय प्रभाव को यथासम्भव रोकने की कोशिश कर रहा है। ऐसे में सवाल उठता है कि अविश्वास के इस वातावरण में दोनों देशों के बीच क्या बातचीत हो सकती है? दोनों तरफ की सीमाओं तनाव और लोगों के बीच उन्माद बढ़ने से क्या लाभ या हानि होगी? इस सन्दर्भ में यह समझने की जरूरत है कि पाकिस्तानी सेना का राष्ट्रीय सुरक्षा के निर्णयों में प्रभाव है जिनका असर दक्षिण एशिया की क्षेत्रीय सुरक्षा पर पड़ता है।

भारतीय सिविल सोसायटी में भी मांग उठ रही है कि हमको ऑपरेशन पराक्रम के स्टाइल सरीखी आक्रामक कूटनीति को अपनान चाहिए। यह वाजपेयी–ब्रजेश मिश्रा मनमोहन सिंह कूटनीतिक लाइन के उलट है। यह समझने की जरूरत है कि इस आक्रामक रणनीति की कीमत चुकानी होगी। जिहादी तत्व (पाकिस्तानी सेना में भी शामिल) तो मना रहे है कि दोनों देशों के बीच तनाव बढ़े और कश्मीर मुद्दा एक बार फिर सुर्खियों में आ जाए। वक्त की मांग है कि दृढ़ता का परिचय देते हुये भारतीय नेतृत्व पाकिस्तान को शान्ति का माहौल बनाने के लिये राजी करें। अतीत की तुलना में वहां की सभी बड़ी पार्टियां भारत के साथ संबंध सुधारने पर सहमत है। पाकिस्तान में मुम्बई पर हुए 26/11 आतंकी हमले में शामिल आतंकियों के खिलाफ चल रहे केस मे कुछ खास प्रगति नहीं होने से भारत चिंतित है। यह कई द्विपक्षीय मसलों पर सहमति के ही लेकिन निश्चित रूप से इसमें कुछ तत्व हिन्दुस्तान के भी शामिल रहे है, जिन्होंने उसमें योगदान दिया होगा। उसी के कारण देश में तनाव पैदा हुए और कई जगह तो अलर्ट भी जारी किए गए जैसे इलाहबाद में, लेकिन सरकार की मुस्तैदी के कारण वहां बहुत ज्यादा परेशानी पैदा नहीं हुई। इसके बावजूद यह कहा जा सकता है कि इस समय की जो परिस्थिति है, उसमें पाकिस्तान की प्रमुख भूमिका है। पाकिस्तान से हिन्दुओं को भगाने की कोशिश हो रही है, उससे ध्यान भटकाने के लिए उन्होंने यह कदम उठाया और हम उसके शिकार बने। सबसे महत्वपूर्ण बात यह हे थ्क इस देश में भिन्नताओं के बावजूद साथ–साथ रहने की परम्परा एक लम्बे समय से मजबूत रही हैं दुर्भाग्य से हमारे देश में भी कुछ ऐसे तत्व पैदा हुये है, जो राजनीतिक फायदे के लिए सहअस्तित्व की प्रक्रिया को चुनौती दे रहे है। इसे कमजोर करना चाहते है। इसलिए पाकिस्तान को मदद मिलती है। हिन्दुस्तान के अन्दर के उन सारी ताकतों से जो सहनशीलता और सद्भाव के खिलाफ है। ऐसे संकीर्ण तत्व समझते है कि एकांकी पहचान पैदा कर के ही उनको राजनीतिक फायदा पहुंच सकता है। लिहाजा, वे ऐसी संकीर्ण विचारधारा के लोग पाकिस्तान की कुत्सित चालों में अपना योगदान देते है।

तकनीक और वेबसाइट वगैरह का इस्तेमाल किया, वह पहले से सोची हुई साजिश का सबूत है। अब अगर हम उनसे यह शिकायत करे कि आप यह कर रहे है तो वें कह देगे कि हम नहीं कर रहे है जबकि पाकिस्तान हिन्दुस्तान में अस्थिरता पैदा करने में कोई कसर छोड़ेगा नहीं। यह अलग बात है कि पाकिस्तान दोनों देशों के बीच अच्छे संबंध होने का राग भी अलापेगा लेकिन वह हिन्दुस्तान में अस्थिरता पैदा करने में जिन चीजों का इस्तेमाल कर सकता है, चाहे वह नकली नोट के माध्यम हो, अवैध घुसपैठ कर के हो, आतंकी हमलो की योजना बनाने या उसे लागू कर के हो या साइबर युद्ध के नए तरीके से हो, वह हर कदम उठाएगा। उसी का यह एक विस्तार है कि उन्होंने इण्टरनेट का फायदा उठाकर हिन्दुस्तान मे लोगों के बीच आपसी बैर पैदा करने की कोशिश की।

© SHARAD

असम समस्या के आर्थिक कारण

असम में जो संघर्ष चल रहा है उसके पीछे मुख्य तौर पर आर्थिक और सामाजिक कारण है लेकिन बेंगलुरू में तो वह कारण नही है। यदि इतने बड़े पैमाने पर अफवाहें नहीं फैलाई गई होतो तो पलायन नहीं होता। मुझे लगता है कि यह हमारे देश की आन्तरिक आबादी का अब तक का सबसे बड़ा पलायन है। उनके इण्टरनेट के इस्तेमाल के कारण तो यह स्थिति बनी।

भारत व पाकिस्तान दोनों देशों के समझ चुनौती

पाकिस्तान के हालात तो खराब है ही ओर उसमें जहां जिनको मौका मिलता है कि वे अपनी सियासत की विफलता से लोगों का ध्यान हटाने के लिये उन अवसरों का इस्तेमाल करते है। फिलहाल पाकिस्तान में सामाजिक विभाजन की प्रक्रिया एक लम्बे अरसे से चल रही है। इसमें खासतौर पर जो वहां के अल्पसंख्यक वर्ग है, उनके ऊपर निशाना बनाया जाता है। पहले उन्होंने ईश–निंदा कानून से ईसाइयों को प्रताड़ित किया। अब कुछ इलाकों में हिन्दुओं के खिलाफ एक मुहिम चल रही है और उसी के नाते जो लोग वहां असहज महसूस कर रहे है, वे यहां आ रहे है। यह अलग बात है कि उनके यहां आने और शरण पाने की इच्छा से समस्या बढ़ी है। इसके अलावा उनके लिए वापस पाकिस्तान लौट कर रहना भी बड़ा मुश्किल है। तो कुल मिलाकर पाकिस्तान की अपनी जो परेशानियां है, खासतौर से ईसाई और हिन्दुओं को लेकर और जिस तरह से वहां आतंकवादी ताकते प्रबल है, उनसे तवज्जो हटाने के लिए उन्होंने यह एक षड़यंत्र रचा कि हिन्दुस्तान हो, एक जगह से दूसरी जगह जाये और उनमें आपस में मनमुटाव पैदा हो। इस मनमुटाव को बढ़ान के लिये उन्होंने जो नई बड़ा रोड़ा है। इन सबके बावजूद मजबूत और स्थिर पाकिस्तान भारतीय हित में है। अपने हितों के लिये हमें कश्मीर मुद्दें के समाधन की तरफ देखना चाहिए। यद्यपि यह भी सही है कि कश्मीर के बजाय पाकिस्तान की प्रकृति और हमारे प्रति उसका आक्रामक रूख दोनों पक्षों के बीच सबसे अहम मसला है। पाकिस्तान से होने वाले हमलों में उसके इन्कार के पीछे प्रमुख रूप से चार पृथक शक्तियों सिविल सरकार, सेना, आई. एस.आई. और आतंकवादी जिम्मेदार हैं जो एक–दूसरे की आड़ में जवाबदेही से बच जाती है। भारत के खिलाफ दुश्मनी पाकिस्तानी सियासत में सेना की स्थायी भूमिका को बताती है जो सिविल सरकार के बावजूद देश को चला रही है। नवाज शरीफ सेना पर लगाम लगाने में कितना सफल होगें यह निकट भविष्य में देखने को मिलेगा।

मिल–बैठकर निकालिए रास्ता

सोशल नेटवर्किंग साइटस पर सरकार की तात्कालिक रोक से हालात संभलते लग रहे है लेकिन मुझे लगता है कि इन वेबसाइटों को लेकर सरकार की एक नीति होनी चाहिए, जिसमें यह भी देखना पड़ेगा कि लोगों की अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का दमन किए बगैर किस प्रकार घृणा और अफवाह फैलाने वालों पर रोक लगाई जा सके। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि सरकार की जो कानून–व्यवस्था बनाए रखने की क्षमता है, उस पर आंच भी नहीं आने देना चाहिए। इलाहाबाद में दंगे इसलिए नहीं भड़क पाये क्योंकि प्रशासन सतर्क था। मुझे लगता है कि ऐसी सतर्कता दूसरी जगहों पर भी होनी चाहिए। इसलिए कानून व्यवस्था बरकरार रखने के लिए हमारे पास एक सशक्त नीति होनी चाहिए।

© SHARAD

तीसरी बात जो असम का झगड़ा है और जिससे ये सारी बातें जुड़ी है, दरअसल वहां 1940 के आस–पास से ही स्थानीय समूहों में लड़ाई–झगड़े की परम्परा रही हैं 1952 के आसपास बंगाली और असमियों के झगड़े हुए फिर उसके बाद आदिवासियों के भी झगड़े होने लगे। इसलिये दो मुद्दों पर हमें सोचना चाहिए एक तो बार–बार बांग्लादेशी घुसपैठ का मुद्दा उठाया जाता है। उसके लिए एक ठोस नीति होनी चाहिए कि हम किसे बांग्लादेशी मानेंगे और किसे बांग्लादेशी नहीं मानेंगे? एक तारीख का निर्धारण किया जाना चाहिए जिसके बाद जो लोग आए वे बांग्लादेशी हो सकते है। लेकिन जो पारंपरिक रूप से 50–100–150 साल से वहां रह रहे है, उन्हें तो बांग्लादेशी नहीं माना जात सकता। इस पर पहले भी एक सहमति और सन्धि हुई थी, जो बीच–बीच में कमजोर पड़ती गई। मुझे लगता है कि वहां के जो राजनीतिक समूह और ताकतें है, उनके साथ मिल–बैठकर कोशिश करनी चाहिए कि बार–बार जो झगड़ा होता है, वह न हो और उसका कोई रास्ता निकाला जाये।

आत्मघाती दस्तों में बच्चें

भारत में एक वर्ग युद्ध की भाषा बोलता है। एक बार में ही सेना लेकर खत्म कर दो या फिर बन्द करो वहां के प्रधानमंत्री को दावत खिलाने के लिए विदेशमंत्री को भेजना, ये दोनों समाधान शायद आज के दौर में नामुमिकल उल–अम्ल है। आज के जमाने में सेना लेकर किसी छोटे–से–छोटे देश का खत्म करना संभव नहीं है। और वह भी तब जब दूसरा, देश पड़ोस का हो और उसके पास हमसे ज्यादा परमाणु बम हो और जिसकी मदद के लिए चीन जैसा एक और पड़ोसी मुल्क तैयार बैठा हो। फिर हम किसको खत्म करना चाहते है। एक ऐसे समाज को जिसमें आतंकवादी फिर हम किसको खत्म करना चाहते है? एक ऐसे समाज को जिसमें आतंकवादी गरीब बच्चों को इस्लाम के नाम पर पैसे देकर मां–बाप से ले जाते है। फिर उन्हें आत्मघाती दस्ते के रूप में फील्ड कमाण्डरों को पैसे लेकर बेच देते है? हम किसे सबक सिखाना चाहते है? नागरिक प्रशासन को, सेना को, आई.एस.आई को, कट्टरपथियों को या फिर वहां की जनता को, संभव है कि जैसे कारगिल युद्ध में प्रधानमंत्री को नहीं पूछा गया था। वैसे ही आई.एस.आई. कब किस को कहा भेज रही हैं न मालूम हो। आतंकी पाकिस्तान में रक्त बीच की तरह है और वह अपने देश को ही खा रहे है। उन्से लड़ने की क्षमता वहां की सेना में भी नहीं है (फाटा में उनकी हार से यह सिद्ध हो चुका है) सेना को खत्म करने के लिए हमें युद्ध करना होगा और वह युद्ध परमाणु युद्ध की हद तक जा सकता है। क्या हम तैयार है इस महंगे सौदें के लिए और वह भी एक ऐसे पड़ोसी से जो अपने से जो देश अपने पड़ोसी चुनते नहीं है, वह ऐतिहासिक घटनाओं की देन होते है। हमें एक पड़ोसी मिला है। इस पडोसी सप्रभुता कभी सैन्य–नागरिक गठजोड़ में तो कभी सैन्य–आतंकी समझौते में तो कभी पूर्ण सैन्य संस्थाओं में हमपूछ रहता है। शायद ही कभी ऐसा हुआ है कि जब पूर्ण नागरिक शासन सम्पूर्ण स्वायत्तता से चला हो। ऐसे में हम किस पर हमला करने, किस से दाउद को छीनने और किसको मिटाने की सोचते है।

अगर हमें पाकिस्तान को सबक सिखाना है तो इतने उलझे राष्ट्र को कमजोर करना गैर–कूटनीतिक अगर हमारी एक कमजोर ना (कश्मीर में आतंकवादी) को इस कदर दबा सकते है, मुस्कराते हुए बशर्ते हमारे राजनीतिक वर्ग में वह दृढ़ संकल्प हो। और जब पूरी तरह टूट जाये तो हम औपचारिक रूप से उसकी मदद को आगे बढ़े और उसे अपने पैरों सभी समाज की मानिद खड़े होने में

© SHARAD

मदद करें लिहाजा पाकिस्तान का मसला ड्राइंग रूप आउटरेज से नहीं बल्कि एक बड़े मुल्क की रूप में मुस्कराते हुए लेकिन दृढ़ संकल्प के साथ करें तो सांप भी मर जाएगा और लाठी भी नहीं टूटेगी।

सुझाव

जुए का एक लोकप्रिय खेल कुछ यों खेला जाता है। मान लीजिए कि पांच अलग–अलग खिलाड़ियों में एक आप हैं। हर एक के पास खेल शुरू करने लिए 100 डॉलर और एक बटन हैं। खिलाडियों के पास एक ही विकल्प है कि वे बटन दबा सकते हैं या फिर नहीं। किसी भी खिलाड़ी द्वारा बटन दबाने के दो नतीजे होते हैं। पहला, यह है कि सभी दूसरे खिलाड़ी अपने–अपने 30 डॉलर गंवा देगें यानी अगर चार खिलाड़ी बटन दबाते हैं, तो आप 120 डॉलर हार जाएंगे, साफ है आप 20 डॉलर के नुकसान में पहुंच जाएंगे, क्योंकि आपके पास 100 डॉलर ही थे। लेकिन किसी खिलाड़ी के बटन दबाने का एक और नतीजा निकलता है। और वह यह कि उस खिलाड़ी का नुकसान स्वतः आधा हो जाता है, यानी यदि आप बटन दबाते हैं, तो आप 60 डॉलर गंवा बैठेगें और इस तरह से आपके पास 40 डॉलर बच जाएगा। खेल के इन नियमों को हर खिलाड़ी जानता है। पर सवाल उठता है कि क्या आपको बटन दबाना चाहिए? यह मामूली सा लगने वाला खेल इंसानी स्वभाव व उसकी प्रेरणा के बारे में बहुत कुछ बताता है साथ ही, यह भी साफ करता है कि क्यों बुद्धिमान नेता भी अविवेकी फैसले लेते हुए दिखते हैं।

एक आदर्श दुनिया वहीं है, जिसमें किसी को भी बटन नहीं दबाना चाहिए और इस तरह से सभी पांच खिलाड़ी अपने–अपने हिस्सें के सौ डॉलर बचा सकते हैं। लेकिन यह आदर्श दुनिया नहीं है और हर खिलाड़ी की अपनी–अपनी वजहें हो सकती ह, उनका प्रेरणाएं भी भिन्न हो सकती हैं। फिर आप अन्य चार खिलाडियों को जानते भी नहीं हैं। ऐसे में, आप उन पर कैसे यकीन करेंगे? भले ही आप शिष्ट हों और आप उचित काम ही कर सकेंगे, लेकिन जब दूसरे आपकी तरह न सोचतें हों, तब क्या होगा? इसलिए यदि आप बटन दबाएंगे, तो आपके पास 40 डॉलर होंगे। यह 100 डॉलर के मुकाबले सुखद स्थिति नहीं है, पर 20 डॉलर के घाटे से तो यकीनन बेहतर है। यह भी मुमकिन है कि शायद आप उन सौ डॉलरों की परवाह न करें और बटन दबा–दबाकर दूसरों को चौंकाते हुए पूरी व्यवस्था में आमूल परिवर्तन करना चाहें। या फिर आपने यह तय कर रखा हो कि बटन दबाने का विरोध करेंगे, क्योंकि भरोसा जीतने के लिए यही नीति ठीक है और आप यह गुणा–भाग भी कर चुके हैं कि आप इस खेल में फिर से शामिल होंगे। इसके लिए आप 120 डॉलर गवाने को भी तयार हैं। ये सारे फैसले एक खास नजरिये से तर्कसंगत मालूम होते हैं, लेकिन उनमें से सिर्फ एक रास्तें में ही खेल में शामिल हर खिलाड़ी को कामयाब बनाने की क्षमता है। अब खिलाड़ियों की जगह देशों के नाम डालिए, इन देशों के निजी हितों को मुनाफे की जगह रखिए, विश्वास के स्तर को सामान्य जानकारी के स्थान पर और बटनों को सेन्य संघर्ष की जगह पर डालकर देखिए, अचानक यह खेल आपको मनहूस नजर आने लगेगा, क्योंकि इसमें सिर्फ डॉल के लिए बटन दबाए जाते हैं। पिछले महीने, नियंत्रण पर दो भारतीय जवानों के अंग–भंग करके पाकिस्तान ने जोखिम भरा दांव चला। इसके बाद पाकिस्तान फौज, आईएसआई या आतंकी संगठनों पर दोष मढ़ने का खेल शुरू हो गया। ये आरोप इस बात पर निर्भर कर रहे थे कि कौन क्या देख–पढ़ रहा है। लेकिन साजिशकर्ताओं की सुध किसी ने नहीं ली, यानी

भड़काने की चाल काम कर गई। दोनों देशों के बीच भरोसे की बहाली की जो प्रक्रिया चल रही थी, वह लड़खड़ा गई और इ नके रिश्तों में दुश्मनी की नई सुई चुभो दी गई। राजनीतिक संकीर्णता और जनता की नाराजगी के बावजूद पाकिस्तानी फौज, आईएसआई, आतंकी गुट और पाकिस्तानी जनता, चार अलग–अलग खिलाड़ी हैं। हरेक की अपनी पेरणा है। हरके के अपनी हित हैं। इन सबको एक साथ जोड़े, तो नतीजे के तौर पर कभी छोटी सामरिक प्रतिक्रिया दिखेगी और यदि इस खेल में परमाणु बटन की उपस्थिति को ध्यान मेंर खें, तो परिणाम त्रासद दिखेगा।

सभी जानते हैं कि भारत की कुल जीडीपी का महज दसवां हिस्सा है पाकिस्तान और किसी भी प्रकार की फौजी भिड़त उसकी पहले से दयनीय हो चुकी अर्थव्यवस्था को और जर्जर करेगी। तब तो और, जब उसकी फौज को अफगानिस्तान में व अपने ही सूबाई इलाकों में जंग लड़नी पड़ रही है। विडंबना यह है कि अगर पाकिस्तान अर्थव्यवस्था ध्वस्त होता है, तो उसका सबसे ज्यादा नुकसान फौजी हाईकमान का ही होगा। इसके दो कारण हैं। पहला, जीत की उम्दा पैंकजिंग की कोशिशों के बावजूद कारगिल में उसकी हार ने फौज की हालत खराब की है। उसने उस वक्त भारत का उकसाया था और अपनी नाक तुड़वा ली। दरअसल, एक सामान्य या बदतर हार भी क्लोज–रैंक ऑर्गेनाइजेशन में घमासान करा देती है। दूसरा और शायद विरोधाभासी कारण है कि पाकिस्तानी फौज वहां की अर्थव्यवस्था के बड़े हिस्से पर कब्जा जमाए बैठी है। आयशा सिद्दीकी अपनी किताब मिलिटरी इंकः इनसाइड पाकिस्तानीज मिलिटरी इकोनॉमी में इशारा करती हैं कि बहुत थोड़े से सेवारत व सेवानिवृत्त फौजी अफसर पाकिस्तानी अर्थव्यवस्था के एक बड़े हिस्से को नियंत्रित करते हैं। इसलिए यह कहना गलत नहीं होगा कि अगर पाकिस्तानी अर्थव्यवस्था और कमजोर होती है, तो फौज सबसे ज्यादा घाटे में रहेगी, और जाहिर–सी बात है कि संघर्ष के दौरान आर्थिक स्थिति खराबत होगी ही।

इसीलिए पाकिस्तानी हाईकमान नाजुक कलाबाजियां खाता रहता है, ताकि वह भारत के साथ तनाव को धीमी व नियंत्रित आंच पर खदबदाता रख सके। आईएसआई के पास दशकों का अनुभव है कि इस तरह की जंग में आतंकियों व फौज का इस्तेमाल कैसे हो और अब इस क्षेत्र से अमेरिका के निकलने के फैसले से उसे वह कोना मिल गया है, जिसकी उसे बेहद जरूरत है।

वांशिगटन पोस्ट के संवाददाता माइकल किंस्ले इस खेल के सिद्धान्त को समझने के लिए एक रूपक का इस्तेमाल करते हैं कि सोचिए, एक चट्टान के सिरे पर खड़ा करके आपको दूसरे आदमी के पैरों से जंजीर के जरिये बांध दिया गया है। अगर उसे जंजीर से निकाल गया तो आपकी जान पर बन आएगी। ऐसें में, यही सही है कि आप दूसरे शख्स का डराएं–धमकाएं कि वह आपको विपरीत दिशा में खींचे। लेकिन इसमें भी जोखिम कम नहीं। ऐसे में, एक रास्ता यह है कि आप चोटी के सिरे की ओर जाकर नाचने लगें, ताकि उसे यह भरोसा हो सके कि आप उसे धक्का देने जैसा गलत कदम नहीं उठाएंगे। कहने का मतलब यह कि पाकिस्तानी फौजी नेतृत्व, जो सही मायने में मुल्क चलाता है, अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए ऐसा डांस कर सकता है, पर चुने गए नेताओं को उसकी निकल नहीं करनी चाहिए और जनता को गलत संदेश देने से बचना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आतंकवाद के पीछें पाकिस्तान, राष्ट्रीय सहारा, 25 अगस्त, 2012
2. पाकिस्तान, ईरान और म्यांमार, दैनिक जागरण, 14 नवम्बर, 2010
3. पाकिस्तान का एक और धोखा, दैनिक जागरण, 26 जून, 2011
4. लाइलाज पाकिस्तान, दैनिक जागरण, 8 मई, 2011
5. सीमा पर शान्ति का सवाल, दैनिक जागरण, 25 अगस्त, 2013
6. कश्मीर का दर्द और सियासत, अमर उजाला, 17 जुलाई, 2013
7. पाकिस्तान की दिशा, हिन्दुस्तान, 4 मई, 2011
8. ये पाकिस्तान है प्यारे, पंजाब केसरी, 21 जनवरी, 2014
9. मजहब के नाम पर षड़यन्त्र होगा नाकाम, पंजाब केसरी, 15 अक्टूबर, 2012
10. जम्हूरियत के खिलाफ साजिस, अमर उजाला, 16 जनवरी, 2013
11. लापरवाही की इंतहा, अमर उजाला, 19 मई, 2011
12. आतंकवादी का आर्थिक तन्त्र, दैनिक जागरण, 16 जनवरी, 2011
13. आतंकवाद की बुनियादी समस्या, दैनिक जागरण, 17 नवम्बर, 2010
14. पाकिस्तान को अलग नजर से देखे, अमर उजाला, 17 अक्टूबर, 2012
15. पाकिस्तान में खतरे की नई घण्टी, हिन्दुस्तान, 10 अप्रैल, 2011
16. लादेन के बाद की घटना, अमर उजाला, 3 मई, 2011
17. पड़ोस में बदलाव का कम्पन, राष्ट्रीय सहारा, 21 जनवरी, 2012
18. आवाम दे जम्हूरियत को अहमियत
19. रामाधान की सरहदें, दैनिक जागरण, 31 जनवरी, 2014
20. मजहबी हिंसा की हकीकत, दैनिक जागरण, 27 अगस्त, 2013
21. भारत–पाक शान्ति वार्ता पर आतंकी प्रहार, अमर उजाला, 20 फरवरी, 2007
22. सीमा पर टूटती सीमाऐं, हिन्दुस्तान, 17 जनवरी, 2013
23. भारत–पाक की प्रमुख लड़ाइयों पर एक नजर, हिन्दुस्तान, 17 जनवरी, 2013
24. पाकिस्तानी फौज की कलाबाजियां, हिन्दुस्तान, 8 फवरवरी, 2013
25. भारत व पाकिस्तान क्यों शुरू हा बातचीत, अमर उजाला, 5 अगस्त, 2013
26. पाकिस्तान से नहीं हिन्दुस्तान से चन्द सवाल, नेशनल दुनिया, 21 अगस्त, 2013
27. पाकिस्तान का असली चेहरा, अमर उजाला, 8 मई, 2011
28. पाकिस्तान की छटपटहाट, दैनिक जागरण, 13 मई, 2011
29. आतंक के प्रतीक का अन्त, दैनिक जागरण, 3 मई, 2011
30. पाकिस्तान का इम्तिहान, दैनिक जागरण, 10 अप्रैल, 2013
31. पाकिस्तान हरकत की जड़ में देखिए, हिन्दुस्तान, 17 जनवरी, 2013
32. अब भारत की बारी, अमर उजाला, 4 मई, 2011

© SHARAD